International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
International Open Access Journal
ISSN No: 2456 - 6470 | www.ijtsrd.com | Volume - 2 | Issue – 3

साहित्य में स्त्री विमर्श का भविष्य

Govind Singh Meena
Associate Professor in Hindi Department, Babu Shobha Ram Govt. Arts College, Alwar, Rajasthan, India

शोध सार

नारी मानव की सृजन-शक्ति, पालन-पोषण की उत्तरदायिनी तथा उसके उन्नयन की एक मात्र आधार रही है। वह समस्त विधाओं व कलाओं के साथ देवी स्वरूपा कही गयी है। 'यस्य नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' द्वारा जहाँ उसकी महत्ता प्रतिपादित की गयी है वहीं 'ताड़न का अधिकारी', 'नारी कुंड नरक का' कह कर उसकी निन्दा भी की गयी है, जिसका हिंदी साहित्य में कई महिला साहित्यकारों ने विरोध किया है।

लेकिन स्त्री-विमर्श का मूल स्वर प्रतिशोधात्मक नहीं है। यह वस्तुतः स्त्री की मुक्ति कामना, बराबरी, सामाजिक न्याय, स्वत्वबोध एवं अस्मिता का ही स्वर है। स्त्री-विमर्श यह मानकर चलता है कि स्त्री अधिकार एवं स्वत्वबोध के विपक्ष में खडे होने के लिए जिम्मेदार पुरुष नहीं है, अपितु पितृसत्तात्मक सिद्धान्तों पर आधारित वह व्यवस्था है जिसके लिए मशहूर महिला रचनाकार अनामिका जी कहती हैं- "स्त्री आन्दोलन पितृसत्तात्मक समाज में पल रहे स्त्री सम्बन्धी पूर्वाग्रहों से पुरुष की कमिक मुक्ति को असम्भव नहीं मानता, दोषी पुरुष नहीं, यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियां उनसे हीनतर हैं. उनके भोग का साधन मात्र आन्दोलन की सार्थकता इसमें है कि वहाँ-वहाँ अंगुली रखें जहाँ-जहाँ मानदण्ड दोहरे हैं, विरूपण, प्रक्षेपण, विलोपन।"

मूल शब्द *- पितृसत्तात्मक, विमर्श, पातिव्रत्य,अज्ञानता।*

परिचय - प्राचीन काल से वर्तमान तक उसकी स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए। नारी का सम्मान पुरुषों के सदृश ही था। वह स्वतन्त्र, मुक्त, उच्चतम शिक्षा ग्रहण करती थी। साथ ही धार्मिक कार्यों से लेकर राजनीति तक प्रत्येक क्षेत्र में कुशल स्वतन्त्रचेता तथा आत्मनिर्भर थी। नारी को इस युग में एक 'रत्न' की संज्ञा से सुशोभित किया गया है, परन्तु उत्तर वैदिक काल में उसकी स्थिति दुर्बल होती चली गयी। पुत्रों को परिवार का रक्षक मानने का दृष्टिकोण प्रारम्भ हो गया। रामायण काल में कन्याओं को अमांगलिक तो नहीं वरन् चिन्ता का कारण माना गया। महाभारत काल में उसे पातिव्रत्य धर्म की शिक्षा के अन्तर्गत पति को देवता, प्रभु गुरू तथा सर्वस्व बताया गया। उसका अधिकार क्षेत्र सीमित होने लगा। बौद्ध, जैन युग में उसे सम्मान व अधिकार तो प्राप्त था परन्तु यह सब उस पर कृपा मात्र ही था। मुसलमानों के आगमन पर नारी की दशा बहु-विवाह, बाल-विवाह, सतीप्रथा आदि कारण कारुणिक वृशोचनीय होती गयी। सही अर्थों में इस काल को 'निकृष्टतम काल' भी कहा जा सकता है।

आधुनिक काल तक आते-आते नारी की स्थिति वैदिक काल के बिल्कुल विपरीत हो गयी। अन्धविश्वास, निरक्षरता तथा अज्ञानता ने उसे इस स्थिति तक पहुँचाया जिसे देखकर दयानन्द सरस्वती, गोविन्द रानाडे, ईश्वरचन्द विद्यासागर, राजा राममोहनराय तथा महात्मा गाँधी जैसे समाज-सुधारकों ने नारी की दशा सुधारने के लिए प्रयत्न किये गये जिसके फलस्वरूप उसकी स्थिति सुधरी तथा वह आज की नारी के रूप में उपस्थित हुई।

वास्तव में क्या है स्त्री-विमर्श ? समाज का वह कौन सा सत्य है जो नारी को सदैव सुर्खियों में रखता है? कल भी और आज भी। आज स्त्री को लेकर बहस छिड़ी हुई है, उसकी स्थिति को अनेक कोणों से परखा जाता है। समकालीन रचनाकारों- मन्नू भण्डारी, कृष्णा

सोबती, शिवानी, प्रियम्वदा, मेहरून्निसा परवेज, मोहन राकेश, श्री कान्त वर्मा, लक्ष्मी कान्त वर्मा और रमेश उपाध्याय आदि ने स्त्री के अनेक रूपों को अपनी रचना का विषय बनाया है। इन रचनाकारों ने जहाँ एक ओर परम्परागत जीवन-मूल्यों, नारी व पुरुष के अधिकारों व नैतिक मूल्यों के विघटन के सन्दर्भ में नारी की पीड़ा को व्यक्त किया है, वहीं दूसरी ओर आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके उसके प्रति सहानुभूति भी व्यक्त करने का सजग प्रयास किया है। ये सभी रचनाकार आधुनिकता बोध से जुड़े तथा समसामयिक समस्याओं से संघर्ष करते हुए स्त्री पात्रों का सजीव चित्रण करने में पूरी तरह सक्षम हैं।

नारी प्रारम्भ से ही साहित्यकारों की प्रेरणदायिनी शक्ति रही है। अतः उन्होनें अनेक सामाजिक परिवर्तनों तथा परिस्थितियों के वैभिन्य के कारण उसके विविध रूपों को प्रस्तुत किया है। वास्तव में किसी भी साहित्य में विषय-बोध अपने सामाजिक परिवेश से अलग नहीं हो सकता। परम्परा, संस्कृति, मूल्य, आदर्श, नियम-निषेध सभी निश्चित रूप से विषय-बोध में विद्यमान रहते। समकालीन हिन्दी साहित्य आधुनिकता बोध का साहित्य है।

आधुनिकता बोध से आशय अपने समसामयिक परिवेश, युगीन - सन्दर्भों एवं जीवन-मूल्यों के प्रति सजगता दिखाने से है। अतः आधुनिकता बोध से प्रभावित होकर ही समकालीन साहित्यकार स्त्री की बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर साहित्य सृजन करने के लिए प्रेरित हुए है ।

आज साहित्य में स्त्री-विमर्श की स्थिति धीरे-धीरे विकासोन्मुख है। स्त्री सम्बन्धी जो धारणायें, जो मुद्दे अब तक नैपथ्य में पड़े हुये थे और पर्दा खिंचा हुआ था, वे एक-एक करके बाहर आ रहे हैं और अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। आज की रचना-धर्मिता में, स्त्री-जाति से अपने समुदाय के भीतर सहभागिता एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा तथा पुरुष वर्चस्व को चुनौती देने का भाव परिलक्षित होता है। सृजन और सहनशीलता स्त्री जाति के वे गुण हैं जो समाज को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में सहयोग करते हैं। मानव-जीवन में जो कुछ भी सुन्दर एवं महत्वपूर्ण है सिर्फ नारी ही उसकी संरक्षिका है। नारी अब अबला नहीं, सबला और सर्वसक्षम है। वे अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सजग, सतर्क और समर्थ है। पुरुष प्रधान

समाज ने उसके कार्य क्षेत्र को सीमित कर जो लक्ष्मण रेखा खींच दी थी, अब वे उससे बाहर निकलकर पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अग्रणी भूमिका निभा रही है नारी अब अबला शब्द बर्दाश्त नहीं करना चाहती। 'महाशक्ति का अंश' में वह कहती है-

'अबला, बेचारी शब्द मिटा दो-
दुर्गा-चण्डी सा बनना है'

सच तो यह है कि आज की नारी इतनी जागरुक हो गयी है कि उसे दया, करूणा, हमदर्दी से बहलाया नहीं जा सकता। आज के लेखन में भी अब स्त्री की ऐसी जीवन्त कथायें वर्णित की जाती हैं, जिनसे प्रेरणा पाकर कोई भी नारी अपना अस्तित्व पहचानने तथा अपनी अस्मिता की रक्षा के लिये तत्पर हो सकती है। आज के बदलते हुये परिवेश में, बने दबाव से यह सम्भव हुआ है कि स्त्रियों की परतन्त्रता को दूर करने का निरन्तर प्रयास किया जा रहा है। उपन्यास सम्राट 'प्रेमचन्द' ने नारी को पुरुष से श्रेष्ठ मानते हुये लिखा है-

"मैं प्राणियों के विकास में नारी को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ।"

छायावादी कवियित्री महादेवी जी ने नारी को इस परतन्त्रता से मुक्ति दिलाने का पूरा प्रयास किया है। उन्होंने अधिकार- विहीन, भविष्यहीन और दयनीय नारी को पुरुष की क्रूरता, अन्याय और अत्याचारों का शिकार बनते देखा था, नारी की यह सोचनीय स्थिति ही उनकी प्रतिक्रिया का कारण बनी और वे नारी मुक्ति की समर्थक तथा उसके अधिकारों की पक्षपाती हो गयी। महादेवी जी की नारी स्वाभिमान से भरी प्रेयसी भी है और पथ-प्रदर्शिका भी। महादेवी जी स्वयं कवियित्री और नारी है, नारी - वेदना की अनुभूति उन्हें भी मिली है, इसके फलस्वरूप उस अनुभूति की अभिव्यक्ति में अधिक स्वभाविकता, वास्तविकता एवं वैयक्तिकता है। वैयक्तिक अनुभूति के कारण भारतीय नारी के करूणापूर्ण परतन्त्रता के चित्रों के अंकन में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है-"उड़ गया जब गन्ध उन्मन बन गया तब सर अपरचित, हो गयी कलिका विरानी निठुर वह मेरी कहानी।"

वे नारी की मुरझायी पलकों से झरते हुये आंसू-कण देखने की तीव्र लालसा व्यक्त करती हैं तथा सुगन्धित पवन को नहीं, दुख के घूंट पीती हुई एक दारुण-स्त्री को देखने की अभिलाशा प्रकट करती हैं। वास्तव में यही उनकी कविता में स्त्री-विमर्श है, जो इन शब्दों में व्यक्त होता है-

"कह दे माँ अब क्या देखूँ!
देखूं खिलती कलियाँ या प्याले सूखे अधरों के,
तेरी चिर-यौवन सुषमा या जर्जर जीवन देखूँ!"

अतः यह निश्चित है कि महादेवी जी की कविता में नारी को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है, उसे मानव की असीम एवं अमोधशक्ति स्वीकारा गया है और उसे सर्वमंगलमयी, सर्वशक्तिमयी सृष्टि की अनुपम कृति समझा गया है। महादेवी जी की दृष्टि में नारी त्याग, बलिदान, साधना आदि की साकार मूर्ति है और अमोधशक्ति का भण्डार भी है।

वस्तुतः वात्स्यायन के कामसूत्र, बौद्धकालीन थेरीगाथा, मध्यकालीन सूरदास, मीरा इत्यादि से होकर माहादेवी तक स्त्री-विमर्श का एक लम्बा इतिहास भारत वर्ष में है। नवोत्थान काल में राजा राम मोहनराय, विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती इत्यादि के प्रोत्साहन तथा प्रेरणा से नारी मुक्ति एवं उसके अधिकारों के प्रति सजगता लाने के उपक्रम हुये। इस दृष्टि से विभिन्न संगठनों की स्थापना तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन समानान्तर चले । भारतेन्दु ने स्त्री शिक्षा के लिए बालबोधिनी शीर्षक पत्रिका का सम्पादन किया था। हिन्दी साहित्य में नारी अधिकारों को वाणी देने वाली सर्वप्रथम महिला होने का श्रेय बंग महिला को जाता है। इस श्रृंखला में बंग महिला तथा मीरा की अगली कड़ी के रूप में महादेवी वर्मा जी ही आती हैं। उन्होनें तीस के दशक में 'श्रृंखला की कड़ियां' में नारी अधिकार एवं नारी मुक्त की जो आवाज उठायी थी, वह स्त्री-विमर्श को पश्चिमी नकल मात्र मानने वाले तर्क को निराधार सिद्ध करती हैं। आज नारी मुक्ति के सन्दर्भ में स्त्री-चेतना में बदलाव की स्थिति को महसूस किया जा सकता है। 'राजविनय शर्मा' "मेरो दरद न जाणै कोय" शीर्षक के अन्तर्गत लेख में लिखते हैं-

"कोई तुम्हें एक्सेप्ट नहीं करता, मत करने दो,
तुम खुद को एक्सेप्ट करो।"

यह पक्तियां निश्चित तौर पर नारी शक्ति को उजागर करती हैं। ऐसे लेख अतीत को भूल कर वर्तमान के साथ सामन्जस्य बैठाने की प्रेरणा देते हैं और भविष्य के प्रति उम्मीद का भाव जाग्रत करते हैं। इन भावों में स्त्री से अपनी अस्मिता की पहचान बनाने का आग्रह भी निहित है। 'एक जमीन अपनी', 'आवाँ' जैसे उपन्यासों में नारी मुक्ति, नारी की दशा- दिशा और छवि आदि बहुत सारे मुद्दों पर विचार-विमर्श करते हुये विभिन्न लेखिकाओं ने बहुत से प्रश्न उठाए हैं।

निष्कर्ष - स्त्री-विमर्श का मूल स्वर प्रतिशोधात्मक नहीं है। यह वस्तुतः स्त्री की मुक्ति कामना, बराबरी, सामाजिक न्याय,

स्वत्वबोध एवं अस्मिता का ही स्वर है। स्त्री-विमर्श यह मानकर चलता है कि स्त्री अधिकार एवं स्वत्वबोध के विपक्ष में खडे होने के लिए जिम्मेदार पुरुष नहीं है, अपितु पितृसत्तात्मक सिद्धान्तों पर आधारित वह व्यवस्था है जिसके लिए मशहूर महिला रचनाकार अनामिका जी कहती हैं- "स्त्री आन्दोलन पितृसत्सात्मक समाज में पल रहे स्त्री सम्बन्धी पूर्वाग्रहों से पुरुष की कमिक मुक्ति को असम्भव नहीं मानता, दोषी पुरुष नहीं, यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियां उनसे हीनतर हैं। उनके भोग का साधन मात्र आन्दोलन की सार्थकता इसमें है कि वहाँ-वहाँ अंगुली रखें जहाँ-जहाँ मानदण्ड दोहरे हैं, विरूपण, प्रक्षेपण, विलोपन।"

अतः आवश्यकता आज यह है कि प्रकृति से जुड़कर साहित्य में नारी की स्थिति में परिवर्तन लाया जाये। नारी संस्कार से जुड़े,

अपनी स्वाभाविकता से जुड़े और जुड़कर विश्व में, समाज में शक्ति का एक पर्याय बन जाये। नारी का सृष्टि के प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उसके योगदान के अभाव में संस्कृति की कल्पना ही अधूरी है। नारी सदैव पुरुष की प्रेरणादायिनी शक्ति रही है।

निष्कर्षतः नारी सम्बन्धी समग्र विमर्श के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि वह स्वयं आज परम्परागत व प्राचीन मान्यताओं को अस्वीकार कर नवीन जीवन-मूल्यों की स्थापना करते हुये सीमित धरातल को त्यागकर विश्व के विस्तृत प्रांगण में विचरण की स्वाभाविक लालसा मन में संजोये जीवन-पथ पर अग्रसर है। नारी में युगानुरूप नवचेतना की प्रवृत्ति के साथ सामाजिक अधिकार, आत्म सम्मान की भावना, आत्म- निर्भरता एवं आत्मविश्वास की प्रवृत्ति समाविष्ट हुई है, जिससे उसने राष्ट्र समाज और जीवन के विकास में पुरुष के साथ अपना महत्व सिद्ध कर दिया है।

संदर्भ ग्रन्थ

[1] विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु दुर्गासप्तशती:- 11/6, पृ0 सं0-160

[2] मनुस्मृति 3/50-57

[3] 'ढोल, गंवार, शूद्र, पसु नारी, सकल, ताड़ना के अधिकारी'- रामचरितमानस (सुन्दरकाण्ड), पृ० सं०- 855, 58/3

[4] कबीर ग्रन्थावली - श्याम सुन्दर दास पृ० सं०-31

[5] भारतीय सामाजिक संस्थाएं मोतीलाल गुप्ता, पृ० सं०-435

[6] प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास श्री कृष्ण ओझा, पृ० सं०-302

[7] अथर्ववेद-भाषा भाष्य-क्षेमकरण दास त्रिवेदी, पृ० सं०-351 (11/15)

[8] प्राचीन भारतीय इतिहास में नारी-डॉ० गजानन शर्मा, पृ० सं०-47

[9] 'कन्या पितृत्वं' दुखं हि सर्वेषां मानकाडिक्षाणाम्-बाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड पूर्वाद्ध, 9/9/10

[10] आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी- सरला दुआ, पृ० सं०-38

[11] भारतीय नारी- दशा-दिशा- आशा रानी वोहरा, पृ० सं०- 8